Chapter चौवन

कृष्ण-रुक्मिणी विवाह

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण करने के बाद विरोधी राजाओं को परास्त किया, रुक्मिणी के भाई रुक्मी को विकृत किया और रुक्मिणी को राजधानी द्वारका में लाकर उससे विवाह किया।

जब श्रीकृष्ण राजकुमारी रुक्मिणी को लिये जा रहे थे तो शत्रु राजाओं ने सेना एकत्र की और उनका पीछा किया। बलदेव तथा यादव सेना के प्रमुख, उनका मार्ग रोकने के लिए मुड़कर उनका सामना करने लगे। शत्रु सेनाएँ भगवान् कृष्ण की सेना पर बाणों की लगातार वर्षा करने लगीं। अपने होने वाले पति की सेना पर इस तरह प्रचण्ड आक्रमण होते देख श्रीमती रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की ओर डरी हुई नजर से देखा। किन्तु कृष्ण केवल हँस पड़े और उनसे कहा कि डर की कोई बात नहीं है, क्योंकि उनकी सेना विपक्षी सेना का अवश्य ही संहार कर देगी।

तत्पश्चात् भगवान् बलराम तथा अन्य वीरगण *नाराच* बाणों द्वारा विपक्षी सेना का संहार करने लगे। यादवों के हाथ करारी हार खाकर जरासन्ध इत्यादि शत्रु राजा लौट गये।

जरासन्ध ने शिशुपाल को यह कहकर ढाढ़स बँधाया, ''सुख-दुख कभी स्थायी नहीं होते। वे तो ईश्वर के अधीन हैं। कृष्ण ने मुझे सत्रह बार हराया किन्तु अन्त में मैं उन पर विजयी हुआ। इस तरह यह देखकर कि जय-पराजय तो दैव तथा काल के अधीन है, मैंने शोक या हर्ष के सामने झुकना नहीं सीखा है। सम्प्रति काल यादवों के अनुकूल है, अत: उन्होंने छोटी-सी सेना से तुम्हें परास्त कर दिया है

किन्तु भविष्य में काल तुम्हारा साथ देगा और तुम अवश्य विजयी होगे।'' इस प्रकार ढाढ़स दिये जाने पर शिशुपाल अपने अनुयायियों के साथ अपने राज्य को लौट गया।

रुक्मिणी का भाई रुक्मी कृष्ण से घृणा करता था अत: कृष्ण के द्वारा अपनी बहन के अपहरण से वह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। अत: उसने वहाँ पर उपस्थित सभी राजाओं के समक्ष प्रतिज्ञा की कि वह तब तक कुण्डिन नहीं लौटेगा जब तक वह कृष्ण का विनाश नहीं कर लेता और रुक्मिणी को छुड़ा नहीं लेता। अत: वह अपनी सेना लेकर भगवान् पर आक्रमण करने के लिए रवाना हो गया। उसे भगवान् कृष्ण की महिमा का पता न था इसलिए वह अकेले रथ पर चढ़कर कृष्ण पर आक्रमण करने गया। उनके पास जाकर उसने उन पर बाणों से प्रहार किया और रुक्मिणी को छोड़ देने की माँग की। श्रीकृष्ण ने रुक्मी के हथियारों को खण्ड खण्ड कर डाला। तब उन्होंने अपनी तलवार ऊँचे उठाई और रुक्मी को मारने ही जा रहे थे कि रुक्मिणी ने बीच में रोक कर अपने भाई को छोड़ देने की जोरदार याचना की। भगवान् कृष्ण ने रुक्मी को जान से नहीं मारा किन्तु अपनी तलवार से रुक्मी के सिर के इधर-उधर से कुछ बाल काट लिये, जिससे वह विकृत हो गया। तभी बलदेव यादव-सेना लेकर वहाँ आ गये। रुक्मी को विकृत देखकर उन्होंने कृष्ण को धीरे से डाँटते हुए कहा, ''सगे-सम्बन्धी को इस प्रकार विकृत करना उसे मारने के तुल्य है, अत: उसे मारना नहीं चाहिए और छोड़ दिया जाना चाहिए।''

तब बलदेव ने रुक्मिणी से कहा कि तुम्हारे भाई की यह दुर्दशा उसके विगत कर्म के कारण है क्योंकि हर व्यक्ति अपने सुख-दुख के लिए स्वयं जिम्मेदार है। उन्होंने रुक्मिणी को जीवात्मा की दिव्य-स्थिति के विषय में उपदेश दिया और बतलाया कि किस प्रकार सुख-दुख का मोह एकमात्र अज्ञान का फल है। बलराम के उपदेश को ग्रहण करके रुक्मिणी ने शोक का परित्याग किया।

तभी रुक्मी ने अपने को पूर्णतया हताश अनुभव किया क्योंकि वह अपने बल एवं लड़ने की शक्ति से वंचित हो गया था। चूँकि उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह कृष्ण को जीते बिना वापस नहीं लौटेगा अत: उसने वहीं एक नगर बनवाया और उसी क्रुद्ध भाव से वहीं रहने लगा।

भगवान् कृष्ण रुक्मिणी को अपनी राजधानी द्वारका ले गये और वहाँ उससे विवाह कर लिया। नागरिकों ने खूब उत्सव मनाया और नगर-भर में धूम मचा दी कि भगवान् ने रुक्मिणी का किस तरह

अपहरण किया है। द्वारका का प्रत्येक नागरिक रुक्मिणी के साथ प्रणयसूत्र में कृष्ण को बँधा देखकर प्रमुदित था।

श्रीशुक उवाच
इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार कहते हुए; सर्वे—सभी; सु-संरब्धाः—अत्यन्त क्रुद्ध; वाहान्—अपने अपने वाहनों में; आरुह्य—चढ़ कर; दंशिताः—कवच पहने हुए; स्वैः स्वैः—अपनी अपनी; बलैः—सेना से; परिक्रान्ताः—घिरे हुए; अन्वीयुः—पीछा करने लगे; धृत—पकड़े हुए; कार्मुकाः—अपने धनुष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह कह कर उन सारे क्रुद्ध राजाओं ने अपने कवच पहने और अपने अपने वाहनों में सवार हो गये। प्रत्येक राजा अपने हाथ में धनुष धारण किये भगवान् कृष्ण का पीछा करते समय अपनी सेना से घिरा हुआ था।

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।
तस्थुस्तत्सम्मुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; आपततः—पीछा करते; आलोक्य—देख कर; यादव-अनीक—यादव सेना के; यूथ-पः—अधिकारी; तस्थुः—खड़े हो गये; तत्—उनके; सम्मुखाः—समक्ष; राजन्—हे राजा (परीक्षित); विस्फूर्ज्य—टंकार देकर; स्व—अपने अपने; धनूंषि—धनुष; ते—वे।

जब यादव सेना के सेनापतियों ने देखा कि शत्रुगण उन पर आक्रमण करने के लिए दौड़ रहे हैं, तो हे राजन्, वे सब अपने धनुषों में टंकार देकर उनका सामना करने के लिए मुड़े और दृढ़तापूर्वक अड़ गये।

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थेऽस्त्र कोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अश्व-पृष्ठे—घोड़े की पीठ पर; गज—हाथी के; स्कन्धे—कंधों पर; रथ—रथों के; उपस्थे—आसनों पर; अस्त्र—हथियारों के; कोविदाः—पटु; मुमुचुः—छोड़ा; शर—बाणों की; वर्षाणि—वर्षा; मेघाः—बादल; अद्रिषु—पर्वतों पर; अपः—जल; यथा—जिस तरह।

घोड़ों की पीठों पर, हाथियों के कन्धों पर तथा रथों के आसनों पर सवार होकर अस्त्रों में पटु शत्रु राजाओं ने यदुओं पर बाणों की वर्षा की जिस तरह बादल पर्वतों पर वर्षा करते हैं।

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ।
सव्रीड्मैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४॥

शब्दार्थ

पत्युः—अपने पति की; बलम्—सेना; शर—बाणों की; आसारैः—भीषण वर्षा से; छन्नम्—ढका हुआ; वीक्ष्य—देख कर; सु-मध्यमा—पतली कमर वाली (रुक्मिणी) ने; स-व्रीडम्—लजाते हुए; ऐक्षत्—देखा; तत्—उसके; वक्त्रम्—मुख को; भय—भय से; विह्वल—विचलित; लोचना—आँखों वाली।

पतली कमर वाली रुक्मिणी ने अपने स्वामी की सेना को बाणों की धुँआधार वर्षा से आच्छादित देख कर भयभीत आँखों से लजाते हुए कृष्ण के मुख की ओर निहारा।

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ।
विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

प्रहस्य—हँस कर; भगवान्—भगवान् ने; आह—कहा; मा स्म भैः—तुम डरो नहीं; वाम-लोचने—हे सुन्दर नेत्रों वाली; विनङ्क्ष्यति—नष्ट कर दी जायेगी; अधुना एव—अभी ही; एतत्—यह; तावकैः—तुम्हारी (सेना) द्वारा; शात्रवम्—शत्रुओं की; बलम्—सेना।

भगवान् ने हँसते हुए उसे विश्वास दिलाया, ''हे सुन्दर नेत्रों वाली, तुम डरो मत! यह शत्रु सेना तुम्हारे सैनिकों द्वारा विनष्ट होने ही वाली है।''

तात्पर्य : रुक्मिणी के प्रति अत्यधिक स्नेह व्यक्त करने के लिए भगवान् कृष्ण ने अपनी यादव सेना को ''तुम्हारे सैनिकों'' कहा जिसमें यह संकेत था कि भगवान् का पूरा वंश अब उनकी प्रिय रानी की सम्पत्ति है। भगवान् कृष्ण अपने आनन्दपूर्ण ऐश्वर्यों की साझेदारी सारे जीवों से करना चाहते हैं और इसीलिए वे उन्हें भगवद्धाम वापस आने के लिए सच्चे मन से आमंत्रित करते हैं। श्रील प्रभुपाद ने अपने आध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेश पर ही कृष्णभावनामृत आन्दोलन का समूचे विश्व में सूत्रपात किया। स्वयं श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने पूज्य पिता श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के आदेश पर सारे भारत में प्रचार करते रहे। हमारा यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवान् कृष्ण के प्रेममय सन्देश का—उन्हें स्मरण करने, उनकी सेवा करने, उनके पास वापस जाकर भगवद्धाम का असीम ऐश्वर्य भोगने का—प्रसार कर रहा है।

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षनादयः ।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनके (विरोधी राजाओं) द्वारा; तत्—वह; विक्रमम्—पराक्रम-प्रदर्शन; वीराः—वीरगण; गद—गद, कृष्ण के छोटे भाई; सङ्कर्षण—बलराम; आदयः—इत्यादि; अमृष्यमाणाः—न सहन करते हुए; नाराचैः—लोहे के बाणों से; जघ्नुः—प्रहार किया; हय—घोड़े; गजान्—हाथी; रथान्—तथा रथों पर।

भगवान् की सेना में गद, संकर्षण इत्यादि वीर विरोधी राजाओं के आक्रमण को सहन नहीं कर सके। अतः वे लोहे के बाणों से शत्रुओं के घोड़ों, हाथियों तथा रथों पर प्रहार करने लगे।

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।
सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७॥

शब्दार्थ

पेतुः—गिरने लगे; शिरांसि—सिर; रथिनाम्—रथारोहियों के; अश्विनाम्—घुड़सवारों के; गजिनाम्—हाथी पर सवार होने वालों के; भुवि—पृथ्वी पर; स—सहित; कुण्डल—कान की बालियाँ; किरीटानि—तथा मुकुट; स—सहित; उष्णीषाणि—पगड़ियाँ; च—तथा; कोटिशः—करोड़ों।

रथों, घोड़ों तथा हाथियों पर सवार होकर लड़ने वाले सैनिकों के सिर करोड़ों की संख्या में गिरने लगे। इनमें से कुछ सिर कुण्डलों से युक्त थे तो कुछों पर मुकुट एवं पगड़ियाँ थी।

हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८॥

शब्दार्थ

हस्ताः—हाथ; स—सहित; असि—तलवारें; गदा—गदा; इषु-आसाः—बाण; करभाः—अंगुलियों से विहीन हाथ; ऊरवः—जाँघें; अङ्घ्रयः—पाँव; अश्व—घोड़ों; अश्वतर—गधों; नाग—हाथियों; उष्ट्र—ऊँटों; खर—जंगली गधों; मर्त्य—तथा मनुष्यों के; शिरांसि—सिर; च—भी।

चारों ओर जाँघें, पाँव तथा अंगुलियों से विहीन हाथों के साथ ही साथ तलवार, गदा तथा धनुष पकड़े हुए हाथ और घोड़ों, गधों, हाथियों, ऊँटों, जंगली गधों तथा मनुष्यों के सिर भी पड़े हुए थे।

तात्पर्य : *करभाः* शब्द कलाई से लेकर अँगुलियों के नीचे तक के भाग का सूचक है। यही शब्द हाथी के सूँड़ का भी द्योतन कर सकता है। अतः इस श्लोक का अर्थ होगा कि युद्ध क्षेत्र में पड़ी हुई जँघाएँ हाथियों की सूँड़ों के समान थीं।

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९॥

शब्दार्थ

हन्यमान—मारे जा रहे; बल-अनीकाः—जिनकी सेनाएँ; वृष्णिभिः—वृष्णियों द्वारा; जय—विजय के लिए; काङ्क्षिभिः—इच्छुक; राजानः—राजागण; विमुखाः—निरुत्साहित; जग्मुः—छोड़ दिया; जरासन्ध-पुरः-सराः—जरासन्ध इत्यादि।

विजय के लिए उत्सुक वृष्णियों द्वारा अपनी सेनाओं को मारे जाते देखकर जरासन्ध इत्यादि राजा हतोत्साहित हुए और युद्ध-भूमि छोड़ कर भाग गये।

तात्पर्य : यद्यपि शिशुपाल ने रुक्मिणी से विवाह नहीं किया था किन्तु वह उसे अपनी सम्पत्ति मानता था और इसीलिए वह विनष्ट हो गया जिस तरह कि अपनी प्रिय पत्नी को खोने वाला मनुष्य।

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

शिशुपालम्—शिशुपाल के; समभ्येत्य—पास जाकर; हृत—चुरायी गई; दारम्—पत्नी वाला; इव—मानो; आतुरम्—विचलित; नष्ट—खोया हुआ; त्विषम्—रंग; गत—गया हुआ; उत्साहम्—उत्साह; शुष्यत्—सूख गया; वदनम्—मुँह; अब्रुवन्—उन्होंने कहा।

सारे राजा शिशुपाल के पास गये जो उस व्यक्ति के समान उद्विग्न था जिसकी पत्नी छिन चुकी हो। उसके शरीर का रंग उतर गया, उसका उत्साह जाता रहा और उसका मुख सूखा हुआ प्रतीत होने लगा। राजाओं ने उससे इस प्रकार कहा।

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।
न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

भोः भोः—अरे महाशय; पुरुष—पुरुषों में; शार्दूल—हे बाघ; दौर्मन-स्यम्—मन की उदास अवस्था; इदम्—यह; त्यज—छोड़ो; न—नहीं; प्रिय—वांछित; अप्रिययोः—या अवांछित का; राजन्—हे राजन्; निष्ठा—स्थायित्व; देहिषु—देहधारी जीवों में; दृश्यते—देखा जाता है।

[जरासन्ध ने कहा] हे पुरुषों में व्याघ्र शिशुपाल, सुनो। तुम अपनी उदासी छोड़ दो। हे राजन्, सारे देहधारियों का सुख तथा दुख कभी भी स्थायी नहीं देखे गये हैं।

यथा दारुमयी योषित्नृत्यते कुहकेच्छया ।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; दारु-मयी—काठ की बनी; योषित्—स्त्री; नृत्यते—नाचती है; कुहक—दिखाने वाले की; इच्छया—इच्छा से; एवम्—उसी तरह से; ईश्वर—ईश्वर के; तन्त्रः—नियंत्रण में; अयम्—यह जगत; ईहते—चेष्टा करता है; सुख—सुख; दुःखयोः—तथा दुख में।

जिस तरह स्त्री के वेश में एक कठपुतली अपने नचाने वाले की इच्छानुसार नाचती है उसी

तरह भगवान् द्वारा नियंत्रित यह जगत सुख तथा दुख दोनों से भिड़ता रहता है।

तात्पर्य : भगवान् की इच्छा से जीवों को उनके कार्यों का उचित फल मिलता है। जो परब्रह्म को जान लेता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में चला जाता है और भौतिक जगत के भीतर स्थित नहीं माना जाता। चूँकि भौतिक जगत के भीतर प्रयासरत लोग ईश्वर की सृष्टि का दोहन करने की अवश्य ही चेष्टा करना चाहते हैं इसलिए उन्हें कर्मफल भोगने पड़ते हैं, जो बद्धजीव के लिए सुख या दुख के रूप में होते हैं। वस्तुत: यदि परम आनन्द की दृष्टि से देखा जाय तो सम्पूर्ण भौतिक जीवन एक विफलता है।

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

शौरेः—कृष्ण से; सप्त-दश—सत्रह; अहम्—मैं; वै—निस्सन्देह; संयुगानि—युद्ध; पराजितः—हारा हुआ; त्रयः-विंशतिभिः—तेईस; सैन्यैः—सेनाओं से; जिग्ये—जीता; एकम्—एक; अहम्—मैंने; परम्—केवल।

मैं कृष्ण के साथ युद्ध में अपनी तेईस सेनाओं सहित सत्रह बार हारा—केवल एक बार उन्हें पराजित कर सका।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में अपरिहार्य सुख तथा दुख के दृष्टान्त के रूप में जरासन्ध अपना ही जीवन का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ।
कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; अहम्—मैं; न शोचामि—शोक नहीं करता; न प्रहृष्यामि—हर्ष प्रकट नहीं करता; कर्हिचित्—कभी; कालेन—समय से; दैव—भाग्य से; युक्तेन—जुड़ा हुआ; जानन्—जानते हुए; विद्रावितम्—संचालित; जगत्—संसार।

तो भी मैं न तो कभी शोक करता हूँ, न हर्षित होता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह संसार काल तथा भाग्य द्वारा संचालित है।

तात्पर्य : यह बता चुकने के बाद कि भगवान् इस जगत का नियंत्रण करते हैं जरासन्ध अब नियंत्रण की विशेष विधि बतलाता है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि वैदिक सन्दर्भ में *काल* एकमात्र दिन, सप्ताह, मास तथा वर्ष जैसे काल मापन की विधि का ही द्योतन नहीं करता अपितु वस्तुओं के

गतिशील होने की *विधि* को बतलाता है। प्रत्येक वस्तु अपने प्रारब्ध के अनुसार गतिशील रहती है और यह प्रारब्ध भी काल कहलाता है क्योंकि हर व्यक्ति का प्रारब्ध काल की गति से प्रकट होता है।

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अधुना—अब; अपि—भी; वयम्—हम; सर्वे—सभी; वीर—वीरों के; यूथ-प—सेनानायकों के; यूथ-पाः—नायक; पराजिताः—हारे हुए; फल्गु—थोड़े से; तन्त्रैः—परिचारकों द्वारा; यदुभिः—यदुओं द्वारा; कृष्ण-पालितैः—कृष्ण द्वारा रक्षित।

और अब हम सभी, सेनानायकों के बड़े बड़े सेनापति, यदुओं तथा उनकी छोटी सेना के द्वारा हराये जा चुके हैं क्योंकि वे सभी कृष्ण द्वारा संरक्षित हैं।

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ।
तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

रिपवः—हमारे शत्रुओं ने; जिग्युः—जीत लिया है; अधुना—अब; काले—समय; आत्म—उनको; अनुसारीणि—पक्षपात करने वाले; तदा—तब; वयम्—हम; विजेष्यामः—जीत लेंगे; यदा—जब; कालः—समय; प्रदक्षिणः—हमारी ओर मुड़ेगा।

अभी हमारे शत्रुओं ने हमें जीत लिया है क्योंकि समय ने उनका साथ दिया, किन्तु भविष्य में जब समय हमारे लिए शुभ होगा तो हम जीतेंगे।

श्रीशुक उवाच

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ।
हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; प्रबोधितः—समझाया-बुझाया; मित्रैः—अपने मित्रों के द्वारा; चैद्यः—शिशुपाल; अगात्—गया; स-अनुगः—अपने अनुयायियों सहित; पुरम्—अपने नगर में; हत—मारे हुओं से; शेषाः—बचे; पुनः—फिर; ते—वे; अपि—भी; ययुः—गये; स्वम् स्वम्—अपने अपने; पुरम्—नगर; नृपाः—राजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह अपने मित्रों द्वारा समझाने-बुझाने पर शिशुपाल अपने अनुयायियों सहित अपनी राजधानी लौट गया। जो योद्धा बच रहे थे वे भी अपने अपने नगरों को लौट गये।

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ।
पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

रुक्मी—रुक्मी; तु—किन्तु; राक्षस—राक्षसी विधि से; उद्वाहम्—विवाह; कृष्ण-द्विट्—कृष्ण से घृणा करने वाला; असहन्—सहन कर पाने में असमर्थ; स्वसु:—अपनी बहिन का; पृष्ठत:—पीछे से; अन्वगमत्—पीछा किया; कृष्णम्—कृष्ण को; अक्षौहिण्या—एक अक्षौहिणी सेना लेकर; वृत:—घेर लिया; बली—शक्तिशाली।

किन्तु बलवान रुक्मी कृष्ण से विशेष रूप से द्वेष रखता था। उससे यह बात सहन नहीं हो सकी कि कृष्ण बलपूर्वक उसकी बहिन को ले जाकर उससे राक्षस-विधि से विवाह कर ले। अत: उसने सेना की एक पूरी टुकड़ी लेकर भगवान् का पीछा किया।

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्ध: शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशित: सशरासन: ॥ १९ ॥
अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि व: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

रुक्मी—रुक्मी; अमर्षी—असहिष्णु; सु-संरब्ध:—अत्यन्त क्रुद्ध; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व—समस्त; भू-भुजाम्—राजाओं के; प्रतिजज्ञे—प्रतिज्ञा की; महा-बाहु:—बाहुबली; दंशित:—कवच पहने; स-शरासन:—अपने धनुष सहित; अहत्वा—बिना मारे; समरे—युद्ध में; कृष्णम्—कृष्ण को; अप्रत्यूह्य—वापस लाये बिना; च—तथा; रुक्मिणीम्—रुक्मिणी को; कुण्डिनम्—कुण्डिन नगर में; न प्रवेक्ष्यामि—प्रवेश नहीं करूँगा; सत्यम्—सच; एतत्—यह; ब्रवीमि—मैं कहता हूँ; व:—तुम सबों से।

उद्विग्न एवं क्रुद्ध महाबाहु रुक्मी ने कवच पहने तथा धनुष धारण किये सभी राजाओं के समक्ष यह शपथ ली थी, ''यदि मैं युद्ध में कृष्ण को मार कर रुक्मिणी को अपने साथ वापस नहीं ले आता तो मैं फिर कुण्डिन नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। यह मैं आप लोगों के समक्ष शपथ लेता हूँ।''

तात्पर्य : रुक्मी ने ये क्रुद्ध वचन कहे और तब वह भगवान् कृष्ण का पीछा करने लगा जैसाकि अगले श्लोकों में है।

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वर: ।
चोदयाश्वान्यत: कृष्ण: तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; रथम्—रथ पर; आरुह्य—चढ़ कर; सारथिम्—सारथी से; प्राह—कहा; सत्वर:—तेजी से; चोदय—हाँको; अश्वान्—घोड़ों को; यत:—जहाँ; कृष्ण:—कृष्ण; तस्य—उसका; मे—मेरे साथ; संयुगम्—युद्ध; भवेत्—होना चाहिए।

यह कहकर वह अपने रथ पर चढ़ गया और अपने सारथी से कहा, ''तुम घोड़ों को जल्दी से हाँक कर वहीं ले चलो जहाँ कृष्ण है। उससे मुझे युद्ध करना है।''

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अहम्—मैं; निशितैः—तीक्ष्ण; बाणैः—बाणों से; गोपालस्य—ग्वाले का; सु-दुर्मतेः—दुष्टबुद्धि; नेष्ये—नष्ट कर दूँगा; वीर्य—अपने बल में; मदम्—घमंड; येन—जिससे; स्वसा—बहिन; मे—मेरी; प्रसभम्—बलपूर्वक; हृता—अपहरण की गई।

''इस दुष्टबुद्धि ग्वालबाल ने अपने बल के घमण्ड में चूर होकर मेरी बहन का बलपूर्वक अपहरण किया है। किन्तु आज मैं उसके घमंड को अपने तीखे बाणों से चूर कर दूँगा।''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि *गोपालस्य* का असली अर्थ ''वेदों के रक्षक का'' है, जबकि *दुर्मतेः* का अर्थ है ''उसका जिसका सुन्दर मन दुष्ट के भी प्रति दयालु होता है।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि रुक्मी के कहने का आशय यह था कि वह आज कृष्ण से युद्ध करके महान् वीर कहलाने का ढोंग छोड़ देगा।

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३॥

शब्दार्थ

विकत्थमानः—डींग मारते हुए; कु-मतिः—मूर्ख; ईश्वरस्य—भगवान् का; अप्रमाण-वित्—परिमाप न जानते हुए; रथेन एकेन—एकाकी रथ सहित; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; तिष्ठ तिष्ठ—रुको और युद्ध करो; इति—ऐसा कहकर; अथ—तब; आह्वयत्—उसने पुकारा।

इस प्रकार डींग हाँकता, भगवान् के पराक्रम के असली विस्तार से अपरिचित मूर्ख रुक्मी, अपने एकाकी रथ में भगवान् गोविन्द के पास पहुँचा और उन्हें ललकारा, ''जरा ठहरो और लड़ो।''

तात्पर्य : इन श्लोकों से लगता है कि यद्यपि रुक्मी एक पूरी सेना की टुकड़ी लेकर रवाना हुआ था किन्तु कृष्ण से युद्ध करने वह स्वयं आगे बढ़ा।

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ।
आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४॥

शब्दार्थ

धनु:—अपना धनुष; विकृष्य—खींचकर; सु—अत्यन्त; दृढम्—दृढ़तापूर्वक; जघ्ने—प्रहार किया; कृष्णम्—कृष्ण पर; त्रिभि:—तीन; शरै:—बाणों से; आह—कहा; च—तथा; अत्र—यहाँ; क्षणम्—एकक्षण; तिष्ठ—ठहरो; यदूनाम्—यदुओं के; कुल—वंश को; पांसन—अरे दूषित करने वाले।

रुक्मी ने भारी जोर लगाकर अपना धनुष खींचा और कृष्ण पर तीन बाण चलाये। तब उसने कहा, ''रे यदुवंश को दूषित करने वाले! जरा एक क्षण ठहर तो!''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी संकेत करते हैं कि *कुल-पांसन* को *कुल-प* (हे यदुवंश के स्वामी) तथा *अंसन* (हे शत्रुओं का वध करने में कुशल) से बना मानना चाहिए। उन्होंने व्याकरणिक व्याख्या भी दी है, जिससे यह भावार्थ सम्भव होता है।

यत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धवि: ।
हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिन: कूटयोधिन: ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ भी; यासि—जाओगे; स्वसारम्—बहन को; मे—मेरी; मुषित्वा—चुराकर; ध्वाङ्क्ष-वत्—कौवे की तरह; हवि:—यज्ञ का घृत; हरिष्ये—मैं वध करूँगा; अद्य—आज; मदम्—तुम्हारे मिथ्या गर्व को; मन्द—रे मूर्ख; मायिन:—धोखेबाज का; कूट—ठग; योधिन:—युद्ध करने वाले का।

''तुम यज्ञ का घृत चुराने वाले कौवे की भाँति मेरी बहन को जहाँ जहाँ ले जाओगे वहाँ वहाँ मैं तुम्हारा पीछा करूँगा। अरे मूर्ख, धोखेबाज, अरे युद्ध में ठगने वाले! मैं आज ही तुम्हारे मिथ्या गर्व को चूर चूर कर दूँगा।''

तात्पर्य : इस पागलपन-भरे आक्रमण में रुक्मी उन्हीं गुणों को प्रदर्शित करता है जिनका आरोप वह कृष्ण पर करता है। हर जीव भगवान् का अंश है और भगवान् से सम्बन्धित है। अत: रुक्मी उस कौवे के समान था, जो कृष्ण द्वारा भोगी जाने वाली हवि को चुराने का प्रयास कर रहा था।

यावन्न मे हतो बाणै: शयीथा मुञ्च दारीकाम् ।
स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; न—नहीं; मे—मेरे; हत:—मारा गया; बाणै:—बाणों से; शयीथ:—लिटा दिया गया; मुञ्च—छोड़ दो; दारीकाम्—लड़की को; स्मयन्—हँसते हुए; कृष्ण:—कृष्ण ने; धनु:—अपना धनुष; छित्त्वा—तोड़ कर; षड्भि:—छ: (बाणों) से; विव्याध—बेध दिया; रुक्मिणम्—रुक्मी को।

''इसके पूर्व कि तुम मेरे बाणों के प्रहार से मरो और लोट-पोट हो जाओ तुम इस लड़की को छोड़ दो।'' इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण मुसकरा दिये और अपने छ: बाणों से रुक्मी पर प्रहार करके उसके धनुष को तोड़ डाला।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि वास्तव में कृष्ण तो रुक्मिणी के साथ सुन्दर फूलों की शैया में लेटने के लिए थे किन्तु रुक्मी ने लज्जावश यह बात सीधे नहीं कही।

अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ।
स चान्यद्धनुराधाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७॥

शब्दार्थ

अष्टभिः—आठ (बाणों) से; चतुरः—चारों; वाहान्—घोड़ों को; द्वाभ्याम्—दो से; सूतम्—सारथी को; ध्वजम्—झंडे को; त्रिभिः—तीन से; सः—वह, रुक्मी; च—तथा; अन्यत्—अन्य; धनुः—धनुष; आधाय—लेकर; कृष्णम्—कृष्ण को; विव्याध—बेध डाला; पञ्चभिः—पाँच से।

भगवान् ने रुक्मी के चारों घोड़ों को आठ बाणों से, उसके सारथी को दो बाणों से तथा रथ की ध्वजा को तीन बाणों से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। रुक्मी ने दूसरा धनुष उठाया और कृष्ण पर पाँच बाणों से प्रहार किया।

तैस्तादितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ।
पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८॥

शब्दार्थ

तैः—इनके द्वारा; ताडितः—प्रहार किया गया; शर—बाणों की; ओघैः—बाढ़ से; तु—यद्यपि; चिच्छेद—तोड़ डाला; धनुः—(रुक्मी का) धनुष; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने; पुनः—फिर; अन्यत्—दूसरा; उपादत्त—उसने (रुक्मी ने) उठा लिया; तत्—वह; अपि—भी; अच्छिनत्—तोड़ दिया; अव्ययः—अविनाशी।

यद्यपि भगवान् अच्युत पर इन अनेक बाणों से प्रहार हुआ किन्तु उन्होंने पुनः रुक्मी के धनुष को तोड़ दिया। रुक्मी ने दूसरा धनुष उठाया किन्तु अविनाशी भगवान् ने उसे भी खण्ड खण्ड कर डाला।

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९॥

शब्दार्थ

परिघम्—परिघ; पट्टिशम्—त्रिशूल; शूलम्—भाला; चर्म-असी—ढाल तथा तलवार; शक्ति—शक्ति; तोमरौ—तोमर; यत् यत्—जो जो; आयुधम्—हथियार; आदत्त—उठाया; तत् सर्वम्—उन सबों को; सः—उस; अच्छिनत्—तोड़ डाला; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

रुक्मी ने जो भी हथियार—परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल तथा तलवार, शक्ति और तोमर—उठाया, उन्हें भगवान् हरि ने छिन्न-भिन्न कर डाला।

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; रथात्—रथ से; अवप्लुत्य—नीचे कूदकर; खड्ग—तलवार; पणिः—अपने हाथ में; जिघांसया—मारने की इच्छा से; कृष्णम्—कृष्ण की ओर; अभ्यद्रवत्—दौड़ा; क्रुद्धः—क्रुद्ध होकर; पतङ्गः—पक्षी; इव—सदृश; पावकम्—हवा, वायु में।

तब रुक्मी अपने रथ से नीचे कूद पड़ा और अपने हाथ में तलवार लेकर कृष्ण को मारने के लिए उनकी ओर अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौड़ा जिस तरह कोई पक्षी वायु में उड़े।

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ।
छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; च—तथा; आपततः—आक्रमण करते हुए; खड्गम्—तलवार; तिलशः—छोटे छोटे खंडों में; चर्म—ढाल; च—तथा; इषुभिः—अपने बाणों से; छित्त्वा—तोड़ कर; असिम्—तलवार को; आददे—उसने ग्रहण किया; तिग्मम्—तेज; रुक्मिणम्—रुक्मी को; हन्तुम्—मारने के लिए; उद्यतः—तैयार।

ज्योंही रुक्मी ने उन पर आक्रमण किया, भगवान् ने तीर चलाये जिससे रुक्मी की तलवार तथा ढाल के खंड खंड हो गये। तब कृष्ण ने अपनी तेज तलवार धारण की और रुक्मी को मारने की तैयारी की।

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; भ्रातृ—अपने भाई को; वध—मारने के लिए; उद्योगम्—प्रयास; रुक्मिणी—श्रीमती रुक्मिणी ने; भय—भय से; विह्वला—घबड़ाई; पतित्वा—गिर कर; पादयोः—पैरों पर; भर्तुः—अपने पति के; उवाच—कहा; करुणम्—करुण स्वर में; सती—साध्वी।

अपने भाई को मार डालने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण को देख कर साध्वी सदृश रुक्मिणी अत्यन्त भयभीत हो उठीं। वे अपने पति के पैरों पर गिर पड़ीं और बड़े ही करुण-स्वर में बोलीं।

श्रीरुक्मिण्युवाच
योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; योग-ईश्वर—समस्त योगशक्ति के नियन्ता; अप्रमेय-आत्मन्—न मापे जा सकने वाले; देव-देव—हे देवताओं के स्वामी; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; हन्तुम् न अर्हसि—आप वध न करें; कल्याण—हे मंगलमय; भ्रातरम्—भाई को; मे—मेरे; महा-भुज—हे बाहुबली।

श्री रुक्मिणी ने कहा : हे योगेश्वर, हे अप्रमेय, हे देवताओं के देव, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे मंगलमय एवं बाहुबली! कृपया मेरे भाई का वध न करें।

श्रीशुक उवाच
तया परित्रासविकम्पिताङ्ग्या
शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितहेममालया
गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तया—उसके द्वारा; परित्रास—पूर्णतया भयभीत; विकम्पित—काँपती हुई; अङ्ग्या—जिसके अंग; शुचा—शोक से; अवशुष्यत्—सूखता हुआ; मुख—जिसका मुख; रुद्ध—तथा भरे हुए; कण्ठया—गले से; कातर्य—आतुरतावश; विस्रंसित—बिखर गई; हेम—सोने की; मालया—गले की माला; गृहीत—पकड़ लिया; पादः—उसके पाँव; करुणः—दयालु ने; न्यवर्तत—छोड़ दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रुक्मिणी के अत्यधिक भयभीत होने से उसके अंग-अंग काँपने लगे, मुँह सूखने लगा तथा त्रास के मारे उसका गला रुँध गया। उद्वेलित होने से उसका सोने का हार माला बिखर गया। उसने कृष्ण के पैर पकड़ लिये। तब भगवान् ने दया दिखलाकर उसे छोड़ दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लौकिक नियम का उद्धरण देते हैं—*दयाया भगिनी मूर्तिः*—कि बहिन साक्षात् दया होती है। यद्यपि रुक्मी दुष्ट था और अपनी बहिन के हित का विरोध करता था किन्तु रुक्मिणी उसके प्रति दयालु थी और भगवान् उसकी दया में भागी हुए।

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारीणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं
यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

चैलेन—कपड़े की पट्टी से; बद्ध्वा—बाँध कर; तम्—उसको; असाधु-कारिणम्—दुष्कर्म करने वाले; स-श्मश्रु-केशम्—कुछ मूछें तथा बाल छोड़ कर; प्रवपन्—मूँड़ करके; व्यरूपयत्—विरूप बना दिया; तावत्—तब तक; ममर्दुः—कुचल दिया था; पर—विपक्षी; सैन्यम्—सेना को; अद्भुतम्—अद्भुत; यदु-प्रवीराः—यदुकुल के वीरों ने; नलिनीम्—कमल के फूलों को; यथा—जिस तरह; गजाः—हाथी।

भगवान् कृष्ण ने उस दुकृत्य करने वाले को कपड़े की पट्टी (दुपट्टे) से बाँध दिया। इसके

बाद उन्होंने उसकी कुछ कुछ मूँछें तथा बाल छोड़ कर शेष सारे बाल हास्यजनक रूप से मूँड़ कर उसको विरूप बना दिया। तब तक यदु-वीरों ने अपने विपक्षियों की अद्‌भुत सेना को कुचल दिया था जिस तरह हाथी कमल के फूल को कुचल देता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अपनी तेज तलवार से दुष्ट रुक्मी के बाल अद्‌भुत तरह से मूँड़ दिये।

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः ।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण के; अन्तिकम्—निकट; उपव्रज्य—जाकर; ददृशुः—उन्होंने (यदु-वीरों ने) देखा; तत्र—वहाँ; रुक्मिणम्—रुक्मी; तथा-भूतम्—ऐसी अवस्था में; हत—मृत; प्रायम्—लगभग; दृष्ट्वा—देख कर; सङ्कर्षणः—बलराम ने; विभुः—सर्वशक्तिमान; विमुच्य—छोड़ कर; बद्धम्—बँधा हुआ (रुक्मी); करुणः—दयालु; भगवान्—भगवान्; कृष्णम्—कृष्ण से; अब्रवीत्—कहा।

जब यदुगण भगवान् कृष्ण के पास पहुँचे तो उन्होंने रुक्मी को इस शोचनीय अवस्था में प्रायः शर्म से मरते देखा। जब सर्वशक्तिमान बलराम ने रुक्मी को देखा तो दयावश उन्होंने उसे छुड़ा दिया और वे भगवान् कृष्ण से इस तरह बोले।

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ।
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

असाधु—अनुचित; इदम्—यह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कृष्ण—हे कृष्ण; कृतम्—किया गया; अस्मत्—हमारे लिए; जुगुप्सितम्—भयावह; वपनम्—मूँड़ना; श्मश्रु-केशानाम्—उसके मूँछ तथा बालों को; वैरूप्यम्—विरूप करना; सुहृदः—पारिवारिक सदस्य का; वधः—मृत्यु।

[बलराम ने कहा] : हे कृष्ण, तुमने अनुचित कार्य किया है। इस कार्य से हमको लज्जित होना पड़ेगा, क्योंकि किसी निकट सम्बन्धी के मूँछ तथा बाल मूँड़ कर उसे विरूपित करना उसका वध करने के ही समान है।

तात्पर्य : सर्वज्ञ बलराम जान गये थे कि रुक्मी दोषी था किन्तु शोकमग्न रुक्मिणी को ढाढ़स दिलाने के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण को भद्रता से डाँटना उचित समझा।

मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ।

सुखदु:खदो न चान्योऽस्ति यत: स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

मा—मत; एव—निस्सन्देह; अस्मान्—हमारे प्रति; साध्वि—हे साध्वी; असूयेथा:—शत्रुता अनुभव करो; भ्रातु:—अपने भाई के; वैरूप्य—विरूप होने की; चिन्तया—चिन्ता से; सुख—सुख; दु:ख—तथा दुख का; द:—देने वाला; न—नहीं; च—तथा; अन्य:—अन्य कोई; अस्ति—है; यत:—क्योंकि; स्व—अपना; कृत—कर्म; भुक्—फल भोगने वाला; पुमान्—मनुष्य।

हे साध्वी, तुम अपने भाई के विरूप होने की चिन्ता से हम पर रुष्ट न होओ। किसी के सुख तथा दुख का उत्तरदायी उसके अपने सिवा कोई दूसरा नहीं होता है, क्योंकि मनुष्य अपने ही कर्मों का फल पाता है।

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ।
त्याज्य: स्वेनैव दोषेण हत: किं हन्यते पुन: ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

बन्धु:—सम्बन्धी; वध—मारे जाने के; अर्ह—योग्य होता है; दोष:—जिसकी बुराइयाँ; अपि—यद्यपि; न—नहीं; बन्धो:—सम्बन्धी से; वधम्—मारे जाने के; अर्हति—योग्य होता है; त्याज्य:—त्याग करने योग्य; स्वेन एव—अपने ही; दोषेण—दोष से; हत:—मारा गया; किम्—क्यों; हन्यते—मारा जाये; पुन:—फिर।

[अब कृष्ण को सम्बोधित करते हुए बलराम ने कहा] : यदि सम्बन्धी के दोष मृत्यु-दण्ड देने योग्य हों तब भी उसका वध नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्युत उसे परिवार से निकाल देना चाहिए। चूँकि वह अपने पाप से पहले ही मारा जा चुका है, तो उसे फिर से क्यों मारा जाये?

तात्पर्य : रुक्मिणी को और अधिक सान्त्वना देने की दृष्टि से बलराम पुन: जोर देकर कहते हैं कि कृष्ण को चाहिए था कि रुक्मी को लज्जित न करते।

क्षत्रियाणामयं धर्म: प्रजापतिविनिर्मित: ।
भ्रातापि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्तत: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

क्षत्रियाणाम्—क्षत्रियों का; अयम्—यह; धर्म:—पवित्र कर्तव्य की संहिता; प्रजापति—आदि सन्तान उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा के द्वारा; विनिर्मित:—स्थापित; भ्राता—भाई; अपि—भी; भ्रातरम्—अपने भाई को; हन्यात्—मारना पड़ता है; येन—जिस (संहिता) से; घोर-तम:—अत्यन्त भयावह; तत:—अत:।
क्षत्रियाणाम्—क्षत्रियों का; अयम्—यह; धर्म:—पवित्र कर्तव्य की संहिता; प्रजापति—आदि सन्तान उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा के द्वारा; विनिर्मित:—स्थापित; भ्राता—भाई; अपि—भी; भ्रातरम्—अपने भाई को; हन्यात्—मारना पड़ता है; येन—जिस (संहिता) से; घोर-तम:—अत्यन्त भयावह; तत:—अत:।

[रुक्मिणी की ओर मुड़कर बलराम ने कहा] : ब्रह्मा द्वारा स्थापित योद्धाओं के लिए पवित्र कर्तव्य की संहिता का आदेश है कि उसे अपने सगे भाई तक का वध करना पड़ सकता है। निस्सन्देह यह सबसे अथावह नियम है।

तात्पर्य : भगवान् बलराम निष्पक्ष भाव से स्थिति का पूरा विश्लेषण कर रहे हैं। यद्यपि अपने सम्बन्धी का वध नहीं करना चाहिए किन्तु सैन्य संहिता के अनुसार कुछ न्यूनीकारक परिस्थितियाँ भी हैं। १८६० ई. में अमरीकी गृह-युद्ध में कुछ परिवार उत्तरी तथा दक्षिणी सेनाओं में बँट गये थे जिससे दुर्भाग्यवश बन्धु-वध सामान्य व्यापार बन गया था। ऐसा वध निश्चय ही *घोरतम* है। किन्तु भौतिक जगत की रीति ही ऐसी है जहाँ कर्तव्य, सम्मान तथा तथाकथित न्याय से संघर्ष छिड़ जाता है। केवल आध्यात्मिक स्तर पर या कि शुद्ध कृष्णभावनामृत में हम संसार की अग्राह्य पीड़ा को लाँघ सकते हैं। रुक्मी गर्व तथा द्वेष से उन्मत्त था अत: वह कृष्ण या कृष्णभावनामृत के विषय में कुछ भी नहीं समझ सका।

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजस: ।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतो: श्रीमदान्धा: क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

राज्यस्य—राज्य का; भूमे:—भूमि का; वित्तस्य—सम्पत्ति का; स्त्रिय:—स्त्री का; मानस्य—सम्मान का; तेजस:—बल का; मानिन:—गर्व करने वाले; अन्यस्य—अन्यों का; वा—अथवा; हेतो:—कारण से; श्री—उनके ऐश्वर्य में; मद—उनकी उन्मत्तता से; अन्धा:—अंधे; क्षिपन्ति—अनादर (तिरस्कार) करते हैं; हि—निस्सन्देह।.

[पुन: बलराम ने कृष्ण से कहा] : अपने ऐश्वर्य के मद से अन्धे हुए दम्भी लोग राज्य, भूमि, सम्पत्ति, स्त्री, सम्मान तथा अधिकार जैसी वस्तुओं के लिए अन्यों का तिरस्कार कर सकते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण मूलत: रुक्मिणी से विवाह करने के निमित्त ही थे। सारे सम्बन्धियों को यही सर्वोत्तम व्यवस्था लग रही थी फिर भी द्वेषवश रुक्मी प्रारम्भ से ही दुर्भावना से इस उत्तम व्यवस्था का विरोधी था। जब अन्तत: उसकी बहिन की इच्छा पूरी हो गई और कृष्ण उसे ले गये तो उसने ओछे अनादर के साथ और भौतिक हथियारों से कृष्ण पर आक्रमण किया। बदले में कृष्ण ने उसे बाँध दिया और उसके कुछ बाल तथा मूँछें मूँड़ दीं। एक ओर जहाँ यह रुक्मी जैसे दम्भी राजकुमार के लिए लज्जास्पद था वहीं उसकी करतूत को देखते हुए यह दण्ड केवल उसकी कलाई पर एक थपकी के समान था।

तवेयं विषमा बुद्धि: सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ।
यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; इयम्—यह; विषमा—पक्षपातपूर्ण; बुद्धिः—मनोवृत्ति; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों के प्रति; दुर्हृदाम्—विचारों वाले; यत्—जो; मन्यसे—तुम चाहते हो; सदा—सदैव; अभद्रम्—बुराई; सुहृदाम्—तुम्हारे शुभचिन्तकों को; भद्रम्—मंगल; अज्ञ-वत्—अज्ञानी पुरुष की भाँति।

[बलराम ने रुक्मिणी से कहा] : तुम्हारी मनोवृत्ति सही नहीं है क्योंकि तुम अज्ञानी व्यक्ति की भाँति उनका मंगल चाहती हो जो सारे जीवों के प्रति शत्रुतापूर्ण हैं और जिन्होंने तुम्हारे असली शुभचिन्तकों के साथ दुष्कृत्य किया है।

आत्ममोहो नृणामेव कल्पते देवमायया ।
सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

आत्म—अपने विषय में; मोहः—मोह; नृणाम्—मनुष्यों का; एव—एकमात्र; कल्पते—पूरा होता है; देव—भगवान् की; मायया—माया द्वारा; सुहृत्—मित्र; दुर्हृत्—शत्रु; उदासीनः—उदासीन; इति—ऐसा सोचकर; देह—शरीर; आत्म—आत्मा के रूप में; मानिनाम्—मानने वालों के लिए।

भगवान् की माया लोगों को उनके असली स्वरूपों को भुलवा देती है और इस तरह शरीर को आत्मा मान कर वे अन्यों को मित्र, शत्रु या तटस्थ मानते हैं।

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एकः—एक; एव—अकेला; परः—परम; हि—निस्सन्देह; आत्मा—आत्मा; सर्वेषाम्—सभी; अपि—तथा; देहिनाम्—देहधारियों में; नाना—अनेक; इव—मानो; गृह्यते—अनुभव की जाती है; मूढैः—मोहग्रस्तों द्वारा; यथा—जैसे; ज्योतिः—नैसर्गिक पिण्ड; यथा—जिस तरह; नभः—आकाश में।

जो लोग मोहग्रस्त हैं, वे समस्त जीवधारियों के भीतर निवास करने वाले एक परमात्मा को अनेक करके मानते हैं जिस तरह से कोई आकाश में प्रकाश को, या आकाश को ही, अनेक रूपों में अनुभव करता हो।

तात्पर्य : इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति *यथा ज्योतिर्यथा नभः* में दो उपमाएँ हैं जिनमें एक ही वस्तु हमें अनेक प्रतीत होती है। *ज्योतिः* नैसर्गिक पिण्डों के यथा सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश का द्योतक है। यद्यपि चन्द्रमा एक है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब हमें जलाशयों, नदियों, झीलों तथा पानी के बर्तनों में दिखता है। तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे कई चन्द्रमा हों जबकि चन्द्रमा रहता है एक ही। इसी प्रकार हम प्रत्येक जीव में दैवी उपस्थिति का अनुभव करते हैं क्योंकि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं यद्यपि हैं

एक ही। दूसरी उपमा है *यथा नभः*। यदि एक कमरे में मिट्टी के कई बन्द पात्र रखे हों तो प्रत्येक पात्र में आकाश या वायु होता है यद्यपि आकाश एक है।

श्रीमद्भागवत में ही (१.२.३२) ऐसा ही दृष्टान्त अग्नि तथा काष्ठ विषयक है—

यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु।

नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान्।

''भगवान्, परमात्मा रूप में सभी वस्तुओं में व्याप्त हैं, जिस तरह काष्ठ में अग्नि रहती है, अतः वह अनेक रूपों में प्रकट होता है, यद्यपि वह अद्वितीय एवं परम है।''

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

देहः—भौतिक शरीर; आदि—प्रारम्भ; अन्त—तथा अन्त; वान्—से युक्त; एषः—यह; द्रव्य—भौतिक तत्त्वों का; प्राण—इन्द्रियाँ; गुण—तथा प्रकृति के मूल गुण (सात्विक, रजो तथा तमो); आत्मकः—रचित; आत्मनि—आत्मा में; अविद्यया—भौतिक अज्ञान का; क्लृप्तः—थोपा हुआ; संसारयति—जन्म तथा मृत्यु के चक्र का बोध कराता है; देहिनम्—देहधारी को।

यह भौतिक शरीर, जिसका आदि तथा अन्त है, भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा प्रकृति के गुणों से बना हुआ होता है। यह शरीर भौतिक अज्ञान द्वारा आत्मा पर लादे जाने से मनुष्य को जन्म तथा मृत्यु के चक्र का अनुभव कराता है।

तात्पर्य : भौतिक शरीर, जो कि विविध भौतिक गुणों, तत्त्वों इत्यादि से बना हुआ है बद्धजीव को आकर्षित-विकर्षित करता रहता है और उसे भव-बन्धन में उलझा देता है। हम अपने ही शरीर तथा अन्य शरीरों के प्रति आकर्षण-विकर्षण से ही अस्थायी सम्बन्ध स्थापित करते हैं, अपने को बड़े बड़े उधमों तथा कष्ट साध्य कार्यों में लगाते हैं, हम काल्पनिक धर्मों को गढ़ते हैं, बढ़िया व्याख्यान देते हैं और भौतिक मोह में अपने को पूरी तरह लिप्त कर लेते हैं। शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है, ''सारा जगत एक मंच के तुल्य है।'' इस बेहूदे संसार रूपी मंच के परे ही असली तथा सार्थक कृष्णभावनामृत का संसार है, जो भगवान् की प्रेममयी भक्ति में लगे शुद्ध जीवों का मुक्त जीवन है।

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चसतः सति ।
तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्ग्रहणाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; आत्मनः—आत्मा के लिए; अन्येन—अन्य किसी से; संयोगः—सम्पर्क; वियोगः—विछोह; च—तथा; असतः—जो सारभूत नहीं है; सति—हे अच्छे-बुरे का ज्ञान रखने वाले; तत्—उस (आत्मा) से; हेतुत्वात्—उत्पन्न होने से; तत्—उस (आत्मा) से; प्रसिद्धेः—प्रकट होने से; दृक्—दृश्य-इन्द्रिय; रूपाभ्याम्—तथा दृश्य-रूप से; यथा—जिस तरह; रवेः—सूर्य के लिए।

हे बुद्धिमान देवी, आत्मा न तो कभी असत् भौतिक पदार्थों के सम्पर्क में आता है न उससे वियुक्त होता है क्योंकि आत्मा ही उनका उद्गम एवं प्रकाशक है। इस तरह आत्मा सूर्य के समान है, जो न तो कभी दृश्य-इन्द्रिय (नेत्र) तथा दृश्य-रूप के सम्पर्क में आता है, न ही उससे विलग होता है।

तात्पर्य : जैसाकि पिछले श्लोक में बतलाया गया है, बद्धजीव अज्ञानतावश अपने को भौतिक शरीर मान लेता है और इस तरह जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है। वस्तुतः पदार्थ तथा आत्मा, प्रत्येक वस्तु के मूल उद्गम भगवान् अर्थात् परम सत्य की सह-शक्तियाँ हैं।

भगवद्गीता (७.५) में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं—*जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्*—यह भौतिक जगत इसलिए बना चला आ रहा है क्योंकि जीव इसका दोहन करना चाहते हैं। यह भौतिक जगत एक कारागार के समान है। अपराधी लोग अपराध करने के लिए कृतसंकल्प रहते हैं इसलिए सरकार को कारागार की व्यवस्था बनाये रखनी होती है। इसी प्रकार भगवान् भौतिक ब्रह्माण्डों को बनाए रखते हैं क्योंकि बद्धजीव उनके विरुद्ध विद्रोह करने और उनके प्रेमपूर्ण सहयोग के बिना ही भोग करने का प्रयास करने पर तुले रहते हैं। इसीलिए यहाँ *तद्-धेतुत्वात्* पद का प्रयोग आत्मा के लिए हुआ है, जिसका अर्थ हुआ कि आत्मा उस पदार्थ के पुंजीभूत होकर भौतिक शरीर बनाने का कारण है। *तत्-प्रसिद्धेः* पद सूचित करता है कि आत्मा से यह शरीर अनुभव होता है और इसी पद से यह भी सूचित होता है कि यह तथ्य प्रबुद्ध व्यक्ति को अच्छी तरह ज्ञात है।

इस श्लोक में प्रयुक्त *आत्मनः* शब्द दिये गये अर्थ के अतिरिक्त परमात्मा का भी सूचक हो सकता है। उस दशा में *तद्-धेतुत्वात्* पद यह सूचित करता है कि भगवान् अपनी निजी शक्ति का विस्तार करते हैं और इस तरह भौतिक ब्रह्माण्ड का प्राकट्य करते हैं। चूँकि भगवान् अपने शुद्ध दिव्य शरीर में शाश्वत रूप में विद्यमान हैं अतएव वे कभी भी भौतिक नहीं हो सकते जैसा यहाँ बताया गया है।

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ।
कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७॥

शब्दार्थ

जन्म-आदयः—जन्म इत्यादि; तु—लेकिन; देहस्य—शरीर के; विक्रियाः—विकार; न—नहीं; आत्मनः—आत्मा के; क्वचित्—सदैव; कलानाम्—कलाओं का; इव—सदृश; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; इन्दोः—चन्द्रमा की; मृतिः—मृत्यु; हि—निस्सन्देह; अस्य—इसका; कुहूः—नवीन चान्द्र-दिवस; इव—सदृश।

जन्म तथा अन्य विकार शरीर में ही होते हैं, आत्मा में नहीं। जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ बदलती हैं, चन्द्रमा नहीं यद्यपि नव-चान्द्र दिवस को चन्द्रमा की ''मृत्यु'' कहा जा सकता है।

तात्पर्य : यहाँपर बलराम यह बतलाते हैं कि किस तरह बद्धजीव अपनी पहचान शरीर से करते हैं और इस पहचान को किस तरह त्याग देना चाहिए। निस्सन्देह, हर सामान्य व्यक्ति अपने को तरुण, प्रौढ़ या वृद्ध अथवा स्वस्थ या रुग्ण मानता है। किन्तु ऐसी पहचान भ्रम है, जिस तरह चन्द्रमा का घटना-बढ़ना भ्रम है। जब हम अपने भौतिक शरीर से अपनी पहचान करते हैं, तो हम अपनी आत्मा को समझने की शक्ति खो देते हैं।

यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ।
अनुभुङ्क्ते ऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; शयानः—सोया हुआ व्यक्ति; आत्मानम्—अपने को; विषयान्—इन्द्रिय-विषयों को; फलम्—फल को; एव—निस्सन्देह; च—भी; अनुभुङ्क्ते—अनुभव करता है; अपि—भी; असति अर्थे—जो सत्य नहीं है उसमें; तथा—उसी प्रकार; आप्नोति—प्राप्त होता है; अबुधः—अज्ञानी; भवम्—संसार को।

जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न के भ्रम के अन्तर्गत अपना, इन्द्रिय भोग के विषयों का तथा अपने कर्म-फलों का अनुभव करता है, उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति इस संसार को प्राप्त होता है।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रुति* का कथन है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—जीव का भौतिक जगत से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। इस श्लोक में इसी बात को बतलाया गया है। ऐसा ही कथन *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र भी (११.२२.५६) आया है—

अर्थेऽह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा।

''जो इन्द्रियतृप्ति का ही चिन्तन करता रहता है उसके लिए भौतिक जीवन जिसका वास्तविक

अस्तित्व नहीं होता, समाप्त नहीं होता जिस तरह कि स्वप्न के कटु अनुभव नहीं जा पाते।''

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अज्ञान—अज्ञान से; जम्—उत्पन्न; शोकम्—शोक; आत्म—स्वयं; शोष—सुखाते हुए; विमोहनम्—तथा मोहग्रस्त होना; तत्त्व—सत्य के; ज्ञानेन—ज्ञान से; निर्हृत्य—दूर करके; स्व-स्था—अपने सहज भाव में स्थित; भव—होओ; शुचि-स्मिते—शुद्ध हँसी वाली।

अत: दिव्य ज्ञान से उस शोक को दूर करो जो तुम्हारे मन को दुर्बल तथा भ्रमित कर रहा है। हे आदि हँसी वाली राजकुमारी, तुम अपने सहज भाव को फिर से प्राप्त करो।

तात्पर्य : भगवान् बलराम श्रीमती रुक्मिणी को स्मरण दिलाते हैं कि वे नित्य लक्ष्मी हैं, जो इस जगत में भगवान् के साथ लीलाएँ कर रही हैं अत: उन्हें अपना तथाकथित शोक त्याग देना चाहिए।

श्रीशुक उवाच
एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; तन्वी—पतली कमर वाली रुक्मिणी; रामेण—बलराम द्वारा; प्रतिबोधिता—समझाई गई; वैमनस्यम्—अपनी उदासी को; परित्यज्य—त्याग कर; मन:—अपना मन; बुद्ध्या—बुद्धि से; समादधे—स्थिर किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार बलराम द्वारा समझाये जाने पर क्षीण-कटि वाली रुक्मिणी अपनी उदासी भूल गईं और आध्यात्मिक बुद्धि से उन्होंने अपना मन स्थिर किया।

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभ: ।
स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथ: ।
चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

प्राण—उसकी प्राण-वायु; अवशेष:—बची हुई; उत्सृष्ट:—निकाला गया; द्विड्भि: —शत्रुओं द्वारा; हत—विनष्ट; बल—उसका बल; प्रभ:—तथा शारीरिक तेज; स्मरन्—स्मरण करके; विरूप-करणम्—अपना विरूपित होना; वितथ—हताश; आत्म—अपनी; मन:-रथ:—इच्छाएँ; चक्रे—बनाया; भोज-कटम् नाम—भोजकट नामक; निवासाय—अपने रहने के लिए; महत्—बड़ी; पुरम्—नगरी।

अपने शत्रुओं द्वारा निष्कासित तथा बल और शारीरिक कान्ति से विहीन अपने प्राण बचाया हुआ रुक्मी यह नहीं भूल पाया कि उसको किस तरह विरूपित किया गया था। हताश हो जाने

के कारण उसने अपने रहने के लिए एक विशाल नगरी बनवाई जिसका नाम उसने भोजकट रखा।

अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अहत्वा—बिना वध किये; दुर्मतिम्—दुष्टबुद्धि; कृष्णम्—कृष्ण को; अप्रत्यूह्य—वापस लाये बिना; यवीयसीम्—अपनी छोटी बहन; कुण्डिनम्—कुण्डिन में; न प्रवेक्ष्यामि—नहीं प्रवेश करूँगा; इति—ऐसा; उक्त्वा—कहकर; तत्र—वहाँ (जहाँ उसे विरूपित किया गया था); अवसत्—रहने लगा; रुषा—क्रोध में।

चूँकि उसने प्रतिज्ञा की थी कि ''मैं तब तक कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा जब तक दुष्ट कृष्ण को मार कर अपनी छोटी बहन को वापस नहीं ले आता'' अत: रुक्मी हताश होकर उसी स्थान पर रहने लगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि *भोज* शब्द का अर्थ है ''अनुभव'' और *कट:* शब्द का अर्थ *नानार्थवर्ग कोश* के अनुसार ''व्रत'' है। अत: भोजकट वह स्थान है जहाँ रुक्मी को अपने व्रत के कारण शोक सहना पड़ा।

भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; भीष्मक-सुताम्—भीष्मक-पुत्री को; एवम्—इस प्रकार; निर्जित्य—पराजित करके; भूमि-पान्—राजाओं को; पुरम्—अपनी राजधानी में; आनीय—लाकर; विधि-वत्—वैदिक आदेशों के अनुसार; उपयेमे—विवाह किया; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं के रक्षक।

हे कुरुओं के रक्षक, इस तरह भगवान् सारे विरोधी राजाओं को हरा कर भीष्मक की पुत्री को अपनी राजधानी ले आये और जहाँ वैदिक आदेशों के अनुसार उससे विवाह कर लिया।

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; महा-उत्सव:—महान् उत्साह; नृणाम्—लोगों द्वारा; यदु-पुर्याम्—यदुओं की राजधानी द्वारका में; गृहे गृहे—घर घर में; अभूत्—उठा; अनन्य-भावानाम्—अनन्य प्रेम; कृष्णे—कृष्ण के लिए; यदु-पतौ—यदुओं के प्रमुख; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, उस समय यदुपुरी के सारे घरों में महान् उत्साह था क्योंकि उसके नागरिक यदुओं

के एकमात्र प्रधान कृष्ण से प्रेम करते थे।

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

नराः—पुरुष; नार्यः—स्त्रियाँ; च—और; मुदिताः—प्रसन्न; प्रमृष्ट—चमकीली; मणि—मणियाँ; कुण्डलाः—तथा कुण्डल; पारिबर्हम्—विवाह के उपहार; उपाजह्रुः—आदरपूर्वक भेंट किया; वरयोः—दूल्हा-दुलहिन को; चित्र—अद्भुत; वाससोः—वस्त्रों वाले।

प्रसन्नता से पूरित होकर एवं चमकीली मणियों तथा कुण्डलों से अलंकृत सारे स्त्री-पुरुष विवाह के उपहार ले आये जिन्हें उन्होंने अति सुन्दर वस्त्र पहने दूल्हा-दुलहिन को आदरपूर्वक भेंट किया।

सा वृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्रकेतुभि-
र्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलै-
रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; वृष्णि-पुरी—वृष्णियों की नगरी; उत्तम्भित—ऊपर उठी; इन्द्र-केतुभिः—मांगलिक ख भों से; विचित्र—नाना प्रकार के; माल्य—फूलों की माला से युक्त; अम्बर—कपड़े के झंडे; रत्न—तथा मणियाँ; तोरणैः—बन्दनवारों से; बभौ—सुन्दर लग रहा था; प्रति—प्रत्येक; द्वारि—दरवाजे पर; उपक्लृप्त—सजा; मङ्गलैः—मांगलिक वस्तुओं से; आपूर्ण—भरे; कुम्भ—जलपात्र; अगुरु—अगुरु से सुगन्धित; धूप—धूप से; दीपकैः—तथा दीपकों से।

वृष्णियों की नगरी अत्यन्त सुन्दर लग रही थी: ऊँचे ऊँचे मांगलिक ख भे तथा फूल-मालाओं, कपड़े के झंडों और बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत तोरण भी थे। प्रत्येक दरवाजे पर भरे हुए मंगल घट, अगुरु से सुगन्धित धूप तथा दीपक सजे थे।

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।
गजैर्द्वाःसु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

सिक्त—छिड़काव की गई; मार्गा—सड़कें; मद—हाथियों के गण्डस्थल से निकला रस; च्युद्भिः—रसता हुआ; आहूत—बुलाया; प्रेष्ठ—प्रिय; भू-भुजाम्—राजाओं के; गजैः—हाथियों से; द्वाःसु—द्वारों पर; परामृष्ट—रख कर; रम्भा—केला; पूग—तथा सुपारी से; उपशोभिता—सजाया गया।

नगरी की सड़कों का छिड़काव उन उन्मुक्त हाथियों द्वारा हुआ था, जो विवाह के अवसर पर अतिथि बनकर आये प्रिय राजाओं के थे। इन हाथियों ने सारे द्वारों पर केले के तने तथा सुपारी

के वृक्ष रख कर नगरी की शोभा और भी बढ़ा दी थी।

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन्सम्भ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

कुरु-सृञ्जय-कैकेय-विदर्भ-यदु-कुन्तयः—कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु तथा कुन्ति वंश के सदस्यों के; मिथः—परस्पर; मुमुदिरे—आनन्द लूटा; तस्मिन्—उस (उत्सव) में; सम्भ्रमात्—उत्तेजनावश; परिधावताम्—जो दौड़ने वाले थे उनमें से।

कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु तथा कुन्ति वंश वाले लोग, उत्तेजना में इधर-उधर दौड़ते लोगों की भीड़ में, एक-दूसरे से उल्लासपूर्वक मिल रहे थे।

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

रुक्मिण्याः—रुक्मिणी के; हरणम्—हरण के विषय में; श्रुत्वा—सुनकर; गीयमानम्—गाया जाता; ततः ततः—सर्वत्र; राजानः—राजागण; राज-कन्याः—राजाओं की पुत्रियाँ; च—तथा; बभूवुः—हो गईं; भृश—अत्यन्त; विस्मिताः—चकित।

सारे राजा तथा उनकी पुत्रियाँ रुक्मिणी-हरण की उस वृतान्त को सुनकर अत्यन्त चकित थे, जो सर्वत्र गीत के रूप में गायी जा रही थी।

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

द्वारकायाम्—द्वारका में; अभूत्—था; राजन्—हे राजन्; महा-मोदः—परम उत्साह; पुर-ओकसाम्—नगरवासियों के लिए; रुक्मिण्या—रुक्मिणी से; रमया—लक्ष्मी स्वरूप; उपेतम्—संयुक्त; दृष्ट्वा—देख कर; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; श्रियः—समस्त ऐश्वर्य के; पतिम्—स्वामी को।

द्वारका के निवासी समस्त ऐश्वर्य के स्वामी कृष्ण को लक्ष्मी स्वरूप रुक्मिणी से संयुक्त देखकर अत्यधिक प्रमुदित थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवे स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण-रुक्मिणी विवाह'' नामक चौवनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।